कांग्रेस का असली चेहरा

अरे मेरे सरकार, बस एक बार इलैक्शन हो जाने दीजिए और हमें पावर में आने दीजिए, फिर आप जो चाहे वो करना। आपको जिस चीज का जितना रेट बढ़ाना है आप बढ़ा लेना। कोई आपको कुछ नहीं कहेगा।" जरा सोच के बताइए कि ये शब्द कौन कह रहा होगा और किस से कह रहा होगा? ऐसा क्यों होता है कि जब भी चुनावों का समय नजदीक आता है तो लगभग 6 महीने पहले ही रोजमर्रा की जरूरतों की वस्तुओं की कीमतें कम हो जाती हैं, इन वस्तुओं में पैट्रोल-डीज़ल, रसोई गैस, खाद्य वस्तुएं, अनाज, दालें, किराया-भाड़ा आदि प्रमुख हैं। चुनाव हो जाते हैं और सत्ताधारी पक्ष एक बार फिर से विजय घोषित हो जाता है। कुछ दिन बीतते हैं या यों कहिए कि नई सरकार के 100 दिन! और जैसे ही सैंच्युरी पूरी हुई कि अचानक एक दिन घोषणा होती है कि सोमवार से पैट्रोल 5 रुपये, डीज़ल 3 रुपये और सीएनजी 2 रुपये महँगे होंगे। इस घोषणा के लगभग एक सप्ताह के बाद ही बस, ऑटो-रिक्शा, टैक्सी आदि के किराए-भाड़े में भी बढ़त्तरी की माँग उठने लगती है। इसके लगभग एक सप्ताह के बाद अचानक दालों, अनाज, मसालों आदि की कीमतें बढ़ा दी जाती हैं। उसके एक सप्ताह के बाद स्टील, धातु, सोना आदि की कीमतें बढ़ जाती हैं।

पिछले 2 दशक से यही प्रचलन देखने में आ रहा है। जब चुनाव नजदीक आते हैं तो सरकारें अचानक महँगाई को कम करने के लिए कड़े कदम उठाती हैं। चुनाव से ठीक 6 महीने पहले सरकार कीमतों पर नियंत्रण भी कर लेती हैं। जनता भी बड़ी भली तथा अन्डरस्टैंडिंग वाली है, वह इस बात को बिल्कुल भूल ही जाती है कि बीते 5 सालों में 4 साल तो उसने दिल खोल कर महँगी चीजें खरीदीं और इसलिए भूल-भुलैया के चक्कर में पड़कर पब्लिक उसी दल को फिर से सत्ता पर काबिज कर देती है। लेकिन जैसे ही चुनाव बीते, समझिए सरकार के सर से बहुत बड़ी टैंशन खत्म हुई। अब सरकार एक बार फिर से सत्ता में आ गई है और एक तिमाही के भीतर ही महँगाई पर लगाई गई वो चुनावी लगाम ढीली पड़ जाती है और नतीजतन चीजों के दाम एक बार फिर से आसमान छूने लग जाते हैं।

अभी हाल ही में खबर आई कि उत्तर प्रदेश में गन्ने की बेहद कम कीमत मिलने के कारण किसानों ने अपना हजारों टन गन्ना खेतों में ही जला दिया। और उसी दिन जब मैं अपने मौहल्ले के दुकानदार से चीनी खरीदने गया तो चीनी का दाम सुनकर हैरान रह गया। "अरे सर! आज तो चीनी 40 रुपये किलो हो गई है।" दुकानदार की आँखों में एक बला की चमक थी। यही हाल अनाज एवं दालों का भी है। जो दालें आज से लगभग एक वर्ष पहले 30-35 रुपये किलो थीं उनके मौजूदा मूल्य 100 रुपये के भी पार पहुँच चुके हैं। दूध जो पिछले वर्ष 19 रुपये का था वो अब 28 रुपये लीटर हो चुका है। हाँ, इस बीच चुनावों से ठीक पहले अनाज-दालों आदि की कीमतों में मामूली कमी जरूर हुई थी जिसका कि सत्ताधारी पक्ष को भी भरपूर फायद हुआ। वैश्विक मंदी और सूखे को महँगाई का कारण बताकर सरकारें तो अपनी जिम्मेदारी से मुक्त हो गईं लेकिन इसका खामियाजा तो आखिर आम आदमी को ही भुगतना पड़ रहा है।

इसका अर्थ यह है कि जहाँ किसान को अपनी फसल का न्यूनतम मूल्य भी नहीं मिल रहा और वही चीजें खुदरा बाजार में 10 गुना तक अधिक कीमत पर मिल रही हैं तो फिर किसान से लेकर ग्राहक के बीच में जो कड़ियाँ हैं अर्थात डीलर, होलसेलर और रिटेलर हैं, कहीं वो ही तो इसकी टोपी उसके सर

मढ़ते वक्त नाजायज कीमतें नहीं बढ़ा रहे? और मोटा मार्जिन कमा कर उसमें से कुछ हिस्सा अपने आकाओं को भी पहुँचारहे हों।

और जब रोजमर्रा की कुछ आवश्यक वस्तुओं के दाम बढ़ जाते हैं तो इसका प्रभाव बाकी वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्यों पर भी पड़ता है जिसके कारण बाकी की चीजों की कीमतें भी सर चढ़कर बोलने लग जाती हैं। जैसा कि अभी हाल ही में दाल-अनाज, दूध, पानी, बिजली, अंडे, खाध-तेल आदि की कीमतें बढ़ने के बाद केक, बिस्किट, मिठाई, दुग्ध उत्पादों आदि की कीमतों में भी वृद्धि हुई। जिससे एक आम आदमी के घर का बजट बुरी तरह से प्रभावित हुआ है।

ऐसा भी नहीं हुआ कि किसी चीज की बहुत अधिक कमी हो गई हो जिससे पूर्ति कम हो गई हो और कीमत बढ़ गई हो। न ही अचानक देश में आवादी में अभूतपूर्व वृद्धि हुई जिससे माँग बेहताशा बढ़ गई हो और इस कारण कीमतें बढ़ गई हों। और न ही ऐसा हुआ कि कोई चीज का वितरण देश में न होकर उस चीज का सीधे विदेशों में निर्यात हो रहा हो तो फिर कीमतों में हुई इस अचानक वृद्धि के पीछे क्या कारण हो सकता है? शायद अमर्त्य सेन जैसा कोई अर्थशास्त्री ही महँगाई के इस सिद्धान्त पर से पर्दा उठा पाए।

लेकिन इतना तय है कि हाल के कुछ वर्षों के ट्रेंड को देखकर तो यही लग रहा है कि कालाबाजारियों, मुनाफाखोरों और घूसखोरों की आपसी साँठ-गाँठ ही इस अकारण महँगाई के पीछे है। इन मुनाफाखोरों ने पहले ही अपने गोदामों को ठसा-ठस भरा हुआ है, ऊपर से पिछले वर्ष के सूखे की मार से आने वाले वर्ष में चीजों की बेतहाशा कमी हो सकती है। और इसी संभावना का फायदा उठाकर अब ये लोग जनता से मनमानी कीमतें वसूल करके अपनी और अपने आकाओं की तोंदें भरते जा रहे हैं।

लेकिन पब्लिक को इस महँगाई की मार को अभी चार साल और झेलना होगा क्योंकि अगले चुनावों से ठीक 6 से 9 महीने पहले उनके द्वारा चुने गए जनप्रतिनिधि इस थोपी हुई मँहगाई को काबू में कर ही लेंगे। ऐसे ही तो भारतीयों के परम्परागत संयम, बड़प्पन और सहनशीलता के गुणों की परीक्षा हो पाएगी।

बी एन शर्मा